* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ८ | गौराब्द ४७६, मास—पद्मनाभ ३, वार—सकर्षण
सोमवार, ३१, भाद्र सम्वत् २०१९, १७ सितम्बर १९६२ | संख्या ४

श्रीराधाकुण्डाष्टकम्

[श्रीरघुनाथ-दास-गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीमदीश्वरी-कुण्डाय नमः

वृषभदनुज-नाशान्नर्म-धर्मोक्ति-रंगैर्निखिल-निजसखीभिर्यत् स्वहस्तेन पूर्णाम् ।
प्रकटितमपि वृन्दारण्य-राज्ञा प्रमोदैस्तदति-सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥१॥

व्रजभुवि मुरशत्रोः प्रेयसीनां निकामैरसुलभमपि तूर्णं प्रेमकल्पद्रुमं तम् ।
जनयति हृदि भूमौ स्नातुरुच्चैः प्रियं यत्तदति-सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥२॥

अघरिपुरपि यत्तादत्र देव्याः प्रसाद-प्रसर-कृतकटाक्ष-प्राप्तिकामः प्रकामम् ।
अनुसरति यदुच्चैः स्नान-सेवानुबन्धैस्तदति-सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥३॥

व्रजभुवन-सुधांशोः प्रेमभूर्मिर्निकामं व्रज-मधुर-किशोरी-मौलिरत्न-प्रियेव ।
परिचितमपि नाम्ना यच्च तेनैव तस्यास्तदति सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥४॥

अपिजन इह कश्चिद् यस्य सेवा-प्रसादैः प्रणयसुरलता स्यात्तस्य गोष्ठेन्द्र-सुनोः।
सपदि किल मदीशा-दास्य-पुष्प-प्रशस्या तदति-सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥५॥

तट-मधुर-निकुञ्जाः कल्पित-नामान उच्चैर्निज-परिजनवर्गैः संविभज्याश्रितास्तैः ।
मधुकर-रुत-रम्या यस्य राजन्ति काम्यास्तदति सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥६॥

तट-भुवि वरवेद्यां यस्य नर्मांति-हृद्यां मधुर-मधुरवर्त्तां गोष्ठचन्द्रस्य भंग्या ।
प्रथयति मिथ ईशा प्राणसख्यालिभिः सा तदति-सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥७॥

अनुदिनमति-रंगैः प्रेममत्तालि-संघैर्वरसरसिज-गन्धैर्हारि-वारि-प्रपूर्णे ।
विहरत इह यस्मिन् दम्पत्ती तौ प्रमत्तौ तदति सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥८॥

अविकलमति देव्याश्चारु-कुण्डाष्टकं यः परिपठति तदीयोल्लासि-दास्यार्पितात्मा ।
अचिरमिह-शरीरे दर्शयत्येव तस्मै मधुरिपुरतिमोदैः श्लिष्यमाणां प्रियां ताम् ॥९॥

व द—

श्रीकृष्ण द्वारा वृषभ नामक दैत्यका विनाश किये जानेपर वृन्दावनेश्वरी श्रीश्रीराधिकाजीके परिहास पूर्ण वचनोंके साथ [अर्थात्—तुमने व्रजराजनन्दन होकर भी वृषभासुरका बध किया है। अतएव तुम्हें गोहत्याका पाप लगा है; राजाद्वारा किये गये पाप प्रजासमूहका भी स्पर्श करते हैं । इसलिये हमें जो पाप लगा है, उससे हमें भी सब तीर्थोंके जलमें स्नान कर शुद्ध होना पड़ेगा।] अपनी समस्त सखियोंके अपने हाथोंसे लाये गये जलसे पूर्ण होकर जो राधा-कुण्ड श्रीनन्दनन्दन द्वारा आमोदपूर्वक इस पृथ्वीपर प्रकटित हुए हैं, वे अतिशय रमणीय सुप्रसिद्ध श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥१॥

जो राधाकुण्ड अपनेमें स्नान करनेवाले व्यक्तिके हृदय क्षेत्रमें चन्द्रा-रुक्मिणी-सत्यभामा आदि मुर-नाशन श्रीकृष्णकी प्रेयसियोंकी अतिशय कामना द्वारा भी दुष्प्राप्य अति सुप्रसिद्ध प्रेमकल्पतरु को उत्पन्न करा देते हैं, वे अति मनोहर श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥२॥

और दूसरोंकी तो बात ही क्या कहूँ, स्वयं अघ-शत्रु श्रीकृष्ण भी मानिनी श्रीराधाजीके विस्तृत प्रसाद जनित कटाक्ष-लाभकी आशासे स्नान-सेवानुबन्धन-हेतु यत्नपूर्वक जिस राधाकुण्डका अनुसरण करते हैं, वे अति मनोरम श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥३॥

व्रजकी मधुर रसाश्रित किशोरियोंकी शिरोमणि-स्वरूपा प्रियतमा श्रीराधाकी भाँति ही जो व्रजभुवन-चन्द्र श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रियपात्र हैं एवं श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारा ही श्रीराधाके नाम पर ही जिनका नाम प्रचारित हुआ है अर्थात् "श्रीराधाकुण्ड" यह नाम प्रकाशित हुआ है, वे अतिकमनीय श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥४॥

जिस राधाकुण्डके सेवानुग्रहसे विवेक आदि शून्य व्यक्ति भी श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णकी प्रणयास्पद रूप प्रेमकल्पलतिका होकर मदीश्वरी श्रीराधाके दास्यरूप पुष्पसमृद्धि लाभकर प्रशंसाके पात्र होते हैं, वे अति रमणीय श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥५॥

श्रीराधाके निज-परिजनों द्वारा अर्थात् श्रीललिता आदि सखियों द्वारा दिये गये उत्तम नामोंसे युक्त, (अर्थात् पूर्वतट पर चित्रा-सुखद-कुञ्ज, अग्निकोणमें

इन्दूलेखा-सुखद कुञ्ज इत्यादि नामोंसे प्रसिद्ध) एवं सखियोंके विभागद्वारा परिजनोंसे आश्रित, भ्रमरके गुञ्जारोंसे गुञ्जरित, सबके वांछनीय, मधुर रसके उद्दीपक निकुञ्जसमूह जिनके तटों पर सुशोभित हो रहे हैं, वे अतिशय मनोहर श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥६॥

जिनके तट-प्रदेशकी उत्तम वेदिकाके ऊपर परमेश्वरी श्रीराधाजी अपनी प्राण-सखियोंके साथ वृन्दावनचन्द्र श्रीव्रजराज-नन्दनके क्रीड़ा-कौतुकादि-सम्बन्धी अतिशय मधुर वार्ता समूहको परस्पर वाक् चातुरीके साथ प्रकाशित कर रही हैं, वे अतिशय मनोहर श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥७॥

उत्तम कमल-सौरभयुक्त मनोहर सलिलसे पूर्ण जिस राधाकुण्डमें श्रीराधाकृष्ण युगल प्रमत्त होकर प्रेममत्त गोपियोंके साथ अतिशय रंगसे प्रतिदिन विहार करते हैं, वे अतिशय रमणीय श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों ॥८॥

जो श्रीमती राधिकाकी सदा-उल्लासदायिनी सेवामें (दासतामें) आत्मसमर्पण पूर्वक श्रीराधिका के इस मनोहर कुण्डाष्टकका निर्मल चित्तसे सर्वतो-भावेन पाठ करेंगे, मधुरिपु श्रीकृष्ण आनन्दित होकर परम हर्षयुक्ता प्रेयसी श्रीराधाका उस साधकको इस शरीरमें स्थिति कालमें ही दर्शन करवा देते हैं ॥९॥

ऐकान्तिक और व्यभिचारी

ऐकान्तिकता किसे कहते हैं ?

श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

"एकला ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य ।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य ॥"

अर्थात् एकमात्र कृष्ण ही ईश्वर हैं और सभी उनके भृत्य हैं; वे कृष्ण जीवको जैसा नचाते हैं, जीव वैसा ही नृत्य करता है । जिसका केवल मात्र एक ही अन्त होता है, वह ऐकान्तिक या भक्त-भृत्य है । एक कहनेसे—संख्यागत समस्त प्रकारके नानात्व के विपरीत भावका बोध होता है । श्रीगीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

व्यवसायात्मिका - बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥
(गी० २।४१)

अर्जुन ! एकमात्र व्यवसायात्मिका बुद्धि रखना; अव्यवसायी व्यक्ति नाना प्रकारकी बुद्धियों द्वारा संचालित होकर असंख्य विषयोंकी सृष्टि करते हैं । यदि लक्ष्य वस्तु एक न होकर अनेक या दो हो तो उससे दो नावोंमें पैर रखनेके फलकी भाँति अहित ही होता है ।

व्यभिचारका लक्षण

ऐकान्तिकताके अभावमें जीव अनेक विषयोंमें आसक्त होने पर व्यभिचारी हो पड़ते हैं । आचारके अपव्यवहारको ही व्यभिचार कहते हैं । यह व्यभिचार ही लक्ष्यभ्रष्ट जीवका उपास्य है । असंयत व्यक्ति अनेकानेक लक्ष्योंके पीछे धावित होते हैं; परन्तु एकको भी प्राप्त नहीं कर पाते । जहाँ स्वजातीय आशय स्निग्ध व्यक्ति अर्थात् एक ही उद्देश्य वाले

स्निग्ध व्यक्ति एकत्र नहीं होते वहीं विषय-जातीय संगमें ही व्यभिचार होता है । अद्वयज्ञान भगवान्, परमात्मा और ब्रह्म एक ही वस्तु हैं; परन्तु व्यवसायात्मिका बुद्धिके अभावमें वह अद्वय वस्तु अनेक सी प्रतीत होती है। ऐकान्तिकताका अभाव ही व्यभिचार का हेतु है ।

अद्वैतवादकी ऐकान्तिकतामें व्यभिचार

निर्विशेषवादी एक ब्रह्मकी कल्पना तो करते हैं परन्तु साथ ही पंच देवताओंकी उपासना भी करते हैं । बहु-ईश्वरवादके व्यभिचारसे रक्षा पानेके लिये वे एक ब्रह्मकी उपासना स्वीकार करते हैं । फिर पंचोपासना द्वारा स्वयं ही व्यभिचारका पोषण करते हैं ।

बहु-ईश्वरवादी असत् साम्प्रदायिक हैं

एक सेवक जिस प्रकार अनेक स्वामियोंकी सेवा करनेमें असमर्थ होता है, उसी प्रकार ऐकान्तिक व्यक्ति बहु-ईश्वरवादको स्वीकार नहीं करता । जो लोग यह कहते हैं कि—व्यभिचारको अङ्गीकार करनेसे उदारता होती है, वे कभी भी साम्प्रदायिक नहीं हो सकते । उपास्य तत्त्व कभी अनेक नहीं हो सकता । अनुरागका अभाव एवं विरोधका स्वभाव—इन दोनोंसे बहु-ईश्वरवादकी सृष्टि होती है । श्रीमद्भागवत कहते हैं—

"भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्—
ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।"

(श्रीमद्भा० ११।२।३७)

उपास्य अनेक होने पर ही भय उत्पन्न होता है

अद्वय-कृष्णज्ञानसे पतित होने पर ही मनुष्य द्वितीयवस्तु (कृष्णेतर वस्तु) के प्रति अभिनिविष्ट होता है । यह द्वितीय अभिनिवेश ही अभयपद ऐकान्तिकताको भुला कर उसे भयरूप व्यभिचारके फौलादी पंजेमें डाल देता है । विषयका अनेकत्व ही भयका कारण है । सच्चिदानन्द विग्रह परमेश्वर कृष्ण ही एकमात्र विषय हैं । जो लोग अपनी कामनाओंकी पूर्त्तिके लिये सूर्य, गणेश, शक्ति और रुद्रकी उपासना करते हैं, वे बहु-ईश्वरवादी एवं व्यभिचारी हैं । भगवद् विमुखता द्वारा ही पंच-देवताओंकी कल्पना होती है ।

कृष्णोपासक एवं पंचोपासकमें भेद

अनेक प्रकारकी कामनाओंसे छुटकारा प्राप्त करने पर ही जीव अद्वयज्ञान तत्त्व श्रीकृष्णको लाभ कर सकता है । ऐसी अवस्थामें विभिन्न प्रकारकी उपासनाएँ नहीं होतीं । परन्तु व्यभिचारी सम्प्रदाय इस युक्तावस्थाके प्रति भी कटाक्ष करनेसे नहीं चूकते । उनका कहना है—कृष्ण भक्त स्वार्थी होते हैं तथा भगवान्को व्यक्तिगत (personal) बनाना चाहते हैं इसलिये ऐकान्तिक भक्तोंका गणेश पूजकोंसे मतभेद है । गणेश पूजासे अर्थकी सिद्धि होती है—इसमें सन्देह नहीं; परन्तु कृष्णकी पूजा करनेसे पार्थिव अर्थ—अनर्थ सा प्रतीत होने लगता है । जड़-अर्थकी कामनावाले व्यभिचारियोंका दल पंचोपासना के प्रति श्रद्धा करके ऐकान्तिकताका विनाश कर डालते हैं तथा ऐकान्तिक कृष्णभक्तको भी अपना जैसा स्वार्थी एवं जड़ अर्थका दास समझते हैं ।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि कृष्ण कोई जड़ वस्तु नहीं हैं । व्यभिचारी व्यक्ति कृष्णदास्यमें जो ऐकान्तिकता और स्वार्थपरता देखते हैं, वह उनलोगों जैसी नीच स्वार्थपरता नहीं है । गणेश पूजनका स्वार्थ—अर्थ प्राप्ति है । परन्तु कृष्णभक्तोंका स्वार्थ—कृष्णको सुख प्रदान करना है ।

पंचोपासक इस तथ्यको न समझ पानेके कारण ऐसा मानते हैं कि जगत् पंचाईती-शासनके अन्तर्गत प्रतिष्ठित रहना ही उचित है । भक्तोंकी ऐकान्तिकता दूर कर हम पाँच व्यक्तियोंको वोट देकर व्यभिचार फैलायेंगे । जड़ जगतमें पाँचका अधिकार रहे; परन्तु जिन्होंने ऐकान्तिकता और अनुरागका स्वरूप समझ लिया है, वे नानात्व, बहुत्व और साधारण भावोंका आदर न कर 'भगवान् ही एकमात्र मेरे और जगतके प्रभु हैं'—ऐसा समझते हैं । इस ऐकान्तिकतामें किसी प्रकारका व्यभिचार नहीं है ।

ऐकान्तिक भक्तका स्वभाव या लक्षण

ऐकान्तिक भक्त केवल एक भगवान्की सेवा करता है; साथ ही अपने स्वजातीयाशय स्निग्ध उद्देश्यके अनुकूल सहचरों (भगवद्भक्तों) को अपनेसे अपृथक् मानता है । जहाँ कृष्णेतर (कृष्णके अतिरिक्त दूसरी) वस्तु के प्रति जीवका अनुराग और सहानुभूति होती है, वहाँ कृष्णभक्ति नहीं होती । कृष्ण भक्त बहु-ईश्वरवादियोंका संग नहीं करते । वे बहु-ईश्वरवादियोंको सन्मार्ग पर लानेके लिये प्रयत्न तो करते हैं, परन्तु उनकी भगवद्विमुख चेष्टाओंका न तो समर्थन करते हैं और न आदर ही । व्यभिचारी-समाज शुद्धवैष्णवको स्वार्थी समझ कर उसे पाँचमिशाली मतवादी बनानेकी भरपूर चेष्टा कर सकता है। परन्तु वैसी अपचेष्टाका परित्याग करने पर वे भी ऐकान्तिक हो सकते हैं । बिना ऐकान्तिकताके किसी प्रकार भी कल्याण नहीं हो सकता है ।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीसरस्वती ठाकुर

श्रीलघु-भागवतामृत

श्रीरूपगोस्वामीजीने अपने "लघु-भागवतामृत" नामक प्रसिद्ध-ग्रन्थमें श्रीकृष्ण-तत्त्व, श्रीकृष्णका प्रकटाप्रकट लीला-तत्त्व और श्रीवैष्णव-तत्त्व—इन तीन विषयोंका विशेष रूपसे विवेचन किया है । श्रीमद्रूपगोस्वामीजीने जगतके विभिन्न प्रकारके उपास्य तत्त्वोंमें कृष्ण-तत्त्वको ही सर्वश्रेष्ठ माना है। स्वयंरूप, तदेकात्मरूप और आवेशरूप—इन त्रिविध भगवत्-रूपोंका उनके धामके साथ विवेचना कर अन्तमें कृष्णको ही सर्वश्रेष्ठ उपास्य-तत्त्व निर्धारित किया है । स्वयंरूप—वह रूप है, जो अन्य रूपोंकी अपेक्षा नहीं करता, वरन् स्वयं स्वतः सिद्ध है । तदेकात्मरूप उसे कहते हैं, जो स्वयंरूपकी अपेक्षा करता है और आकार आदिमें कुछ-कुछ भिन्न रूप जैसा प्रतीत होता है । स्वयंरूप और तदेकात्मरूप—ये दोनों विलास और स्वांश भेदसे दो प्रकारके होते हैं ।

स्वांशरूप-समूह न्यून शक्तियुक्त हैं। ज्ञानशक्ति आदिके द्वारा भगवान् जब महान् जीवोंमें आविष्ट होते हैं, तब उसे भगवान्का "आवेश अवतार" कहते हैं। ये सभी भगवत्-अंश प्रपंचसे सर्वथा अतीत तथा परस्पर अभिन्न होते हैं।

धर्मकी रक्षाके लिये जब पूर्वोक्त रूप-समूह जगतमें आविर्भूत होते हैं, तब वे अवतार कहलाते हैं। अवतार तीन प्रकारके हैं:—(१) पुरुषावतार, (२) गुणावतार और (३) लीलावतार। (१) कारणोदकशायी, गर्भोदकशायी और क्षीरोदकशायी—ये तीन विष्णुरूप ही पुरुषावतार हैं। (२) विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन गुणावतार हैं। इनमेंसे विष्णु ही शुद्ध-सत्त्वका विस्तार करते हैं, इसलिये उनका एक नाम सत्त्वतनु भी है। उनके अवतार भी सत्त्वतनु हैं। विष्णु निर्गुण हैं। विष्णुके स्वांश और कलाओंसे भी ब्रह्मा और शिवकी शक्ति न्यून होती है। विष्णु और उनके अवतारोंकी शक्तियाँ चित्-शक्ति या चित् शक्तिके अंश हैं। (३) लीलावतार अनेक हैं। चतुः सनादि पच्चीस मन्वन्तरावतारोंके अनेक भेद हैं। चारयुगोंमें चार युगावतार होते हैं। कल्पावतार, मन्वन्तरावतार और युगावतार मिलकर ४१ हैं।

आवेश-अवतार चार प्रकारके होते हैं—प्राभव, वैभव, परावस्थ और न्यूनावस्थ। चार कुमार, नारद पृथु और कल्कि आदि आवेश अवतार हैं। कलिकालमें विष्णु प्रत्यक्ष रूप धारणपूर्वक आविर्भूत नहीं होते, इसलिये उनका नाम त्रियुग है। प्राभवावस्थ आवेश-अवतार दो प्रकारके हैं। (१) मोहिनी, हंस आदि विस्तृत कीर्त्तिवाले हैं। (२) धन्वन्तरी, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय, कपिल आदि अल्प कीर्त्ति-विशिष्ट हैं। कुर्म, मीन, नारायण-ऋषि, नर-सखा, श्रीवराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ, बलदेव, यज्ञ आदि चौदह और कुछ रूपोंको लेकर वैभवावस्थ आवेश अवतार इक्कीस हैं।

परावस्थ अवतारोंमें नृसिंह, राम और कृष्ण हैं। ये तीनों षडैश्वर्यशाली हैं। जैसे एक दीपसे दूसरे दीपको जलानेसे दोनों ही समान रहते हैं, वैसे ही ये सभी पूर्ण-शक्तिविशिष्ट हैं। इनका स्थान सबसे ऊपर महावैकुण्ठमें है। श्रीनन्दनन्दन कृष्ण व्रज, मथुरा, द्वारका और गोलोकमें नित्य-विराजमान हैं। दूसरे सभी अंश या कला हैं। इसलिये श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। माधुर्यादि गुणोंकी अधिकताके कारण कृष्णको शास्त्रोंमें ब्रह्म-स्वरूपसे श्रेष्ठ बतलाया गया है। अप्राकृत गुण-युक्त कृष्ण-स्वरूप प्रपञ्च और ब्रह्मसे सर्वदा अतीत होने पर भी पूर्णानन्द घनाकृति रूपसे महाशक्ति-विशिष्ट हैं। ब्रह्म निराकार, निर्विकार और निधर्मक वस्तु-विशेष हैं। इसलिये वे सूर्य-स्थानीय कृष्णके प्रभा मात्र हैं। भृगुके द्वारा ऋषियों ने यह स्थिर किया कि गुणावतारोंमें विष्णु ही श्रेष्ठ हैं। सदाशिव महावैकुण्ठनायक नारायणसे अभिन्न तत्त्व हैं। सभी स्वरूपोंकी अपेक्षा कृष्णकी श्रेष्ठता है। इसलिये वे परव्योमनाथ नारायणसे भी श्रेष्ठ हैं। परव्योमनाथ नारायणकी देवी श्रीलक्ष्मीजी भी कृष्णके रूपसे मोहित हो पड़ती हैं।

शास्त्रोंमें सर्वत्र कृष्णके लिये स्वयंपदका प्रयोग किया गया है। इसलिये कृष्णरूप ही स्वयंरूप है।

कृष्णकी जन्मादि लीलाएँ अनादि हैं । ये सब लीलाएँ समय-समय पर उनकी इच्छासे भूतलपर प्रकटित होती हैं ।

प्रेमी भक्त वृन्दावनमें कृष्णकी लीलाओंका अब भी दर्शन करते हैं, कृष्ण अधोक्षज इन्द्रियातीत होकर भी अपने शक्तिके प्रभावसे भक्तोंको दर्शन दिया करते हैं । कृष्णके बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे तथा पूर्व-उत्तर कुछ भी भेद नहीं हैं । पुराणोंमें कृष्ण लीलाके लिए सर्वत्र वर्तमान कालका प्रयोग पाया जाता है ।

कृष्ण लीला प्रकट और अप्रकट भेदसे दो प्रकार है । कृष्णकी इच्छासे लीला शक्ति उनके परिकरोंको प्रपञ्चमें (भूतल पर) प्रकट कराती हैं । जो प्रपञ्चसे अगोचर है, उसी का नाम अप्रकट लीला है । जो लीलाएँ प्रपञ्चातीत होने के कारण अप्रकट लीला कहलाती हैं, वे ही भूतलपर प्रकटित होनेपर प्रकट लीला कहलाती हैं ।

कृष्ण चतुर्भुज और द्विभूज होनेपर भी द्विभूज कृष्ण की ही श्रेष्ठता है । प्रकट-लीलामें स्वयं-कृष्ण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध भेदसे चार चतुर्व्यूहोंका प्रकाश है । साक्षात् कृष्ण गोप-गोपियोंके साथ वृन्दावनमें ही नित्य-विहार करते हैं । वासुदेव चतुर्व्यूह अवलम्बनपूर्वक यदुपुरीमें गमन करते हैं । द्वारकामें प्रद्युम्नाख्य व्यूह और अनिरुद्धाख्य व्यूहका विस्तार करते हैं । व्रजकी प्रकट लीलामें जो तीन महीनेका विरह होता है, उनमें विस्फूर्त्ति नामक भाव आविर्भूत होता है । तीन महीनेके पश्चात् व्रजवासियोंका श्रीकृष्णके साथ मिलन होता है । प्रकट लीलामें जो विच्छेद है, वह थोड़ी देरके लिए होता है । इस प्रकार तीनों धामोंमें कृष्णकी नित्यलीला है ।

धाम दो प्रकार के हैं:—(१) माथुर धाम और (२) द्वारका धाम । मथुरा धाममें गोकुल और पुर भेद से दो प्रकोष्ठ हैं । वस्तुतः गोकुल ही गोलोक है । प्रकट-लीलामें जो कुछ देखा जाता है, वही गोलोकमें वैभवावस्था लाभ करती हैं । तीनों धामोंकी लीलाएँ नित्य होनेपर भी गोकुल लीलाकी माधुरी सबसे अधिक है । यह माधुरी ब्रह्मा और शिवके लिए भी अगोचर है । इस गोकुल लीलाकी माधुरी भौतिक विचारोंसे अतीत है । इसे केवल शुद्ध प्रेम भक्ति द्वारा ही जाना जा सकता है ।

श्रीरूपगोस्वामीजीने इन कृष्ण-तत्त्वामृत और लीला-माधुर्यामृतका विशदरूपने वर्णनकर अन्तमें भक्तामृत की सूचना की है । भक्तोंमें प्रह्लाद श्रेष्ठ हैं । प्रह्लादसे पांडव श्रेष्ठ हैं । पांडवोंसे यादव श्रेष्ठ हैं । यादवोंमें उद्धव श्रेष्ठ हैं । उद्धवसे व्रजदेवियाँ श्रेष्ठ हैं । गोपियों में श्रीमती राधिकाजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं । श्रीमती राधिकासे और कोई श्रेष्ठ भक्त नहीं है ।

यहाँ संक्षेपमें श्रीरूपगोस्वामीजी के सिद्धान्तोंका संग्रह किया गया । श्रीरूपगोस्वामीजीने और भी अनेक विषयोंमें अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है । किन्तु मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंका ही यहाँ उल्लेख किया गया है ।

श्रीरूपगोस्वामीजीने सर्वत्र शास्त्र-प्रमाण एवं सुयुक्ति देकर अपने सिद्धान्तोंका स्थापन किया है । भिन्न-भिन्न सम्प्रदायके लोगोंको इनमेंसे बहुतसे

सिद्धान्त रुचिप्रद नहीं लगते। परन्तु जो भगवानको यथार्थतः प्राप्त करनेके लिये साधन करते हैं, उन्हें श्रीरूपगोस्वामीजीके सिद्धान्त ही रुचिकर होते हैं।

जिनका जैसा स्वभाव होता है, उन्हें वैसे ही देव-भाव, वैसे ही शास्त्र-वचन, और वैसा ही सङ्ग रुचिकर होता है। 'समशीला भजन्ते वै' के अनुसार जगतमें भिन्न-भिन्न प्रकारके देव-भाव, भिन्न-भिन्न प्रकारके साधन और भिन्न-भिन्न प्रकारके आचार स्वभावतः हो पड़ते हैं।

उपास्य-वस्तु एक होता है। लघु-भागवतामृतके अनुसार सभी उपास्योंमें श्रीनन्दनन्दन ही श्रेष्ठ हैं और सभी उपासकोंमें व्रजगोपियोंके अनुगत साधक वर्ग ही सर्वश्रेष्ठ उपासक हैं।

श्रीरूपगोस्वामीजीने कहीं भी शुष्कतर्क का अवलम्बन नहीं किया है। सभी क्षेत्रोंमें रसपूर्ण वचनों द्वारा शुद्ध भक्ति की ही व्याख्या की है। श्रीरूपगोस्वामीजी धन्य हैं। उनके प्रति महाप्रभु की कृपा धन्य है और धन्य हैं ऐसे साधक जो रसतत्त्वमें प्रवेश करनेके अधिकारी हो गये हैं। भक्तवृन्द इस ग्रन्थको विशेष यत्नके साथ अध्ययनकर श्रीरूपगोस्वामीजीके सिद्धान्तोंको ग्रहण करनेकी चेष्टा करेंगे।

—जगत्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीमद्भागवतमें वात्सल्य—भाव

संसारमें भटकते-भटकते थककर जीवके हृदयमें जब पूर्व संस्कार अथवा साधु-संगतिके कारण भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तमके प्रति सहज अनुरक्ति उत्पन्न होती है, तब उसका मन मायिक पदार्थोंमें नश्वरता-उपलब्धि कर उनके प्रति आसक्तिका परित्याग कर देता है। उसके जीवनका प्रत्येक क्षण भगवान्के पादपद्मोंकी प्राप्तिमें चंचरीक हो उठता है। तभी वह श्रीकृष्णभक्तिका अनुगामी होता है।

"सा परानुरक्तिरीश्वरे" (भक्ति मीमांसा)

अनुरक्ति ही भगवानको अधीन करने का हेतु है।

मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेम परिप्लुता।
अभिसन्धि विनिर्मुक्ता भक्ति विष्णुर्वशंकरी॥
(नारद पंचरात्र)

श्रीभगवान्में मनकी अभिसंधिरहित प्रेम परिप्लुप्त और निरवच्छिन्न गति ही भक्ति है। वही भक्ति भगवान्को अपने वशमें कर लेती है।

भक्तिमें महात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेह भी परमावश्यक है।

"माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोधिकः स्नेहोभक्तिः।"

इस प्रकार की गयी भक्ति भगवान और जीवमें एकरसता ला देती है। भक्तिशास्त्रोंमें भक्तिके दो रूप निर्धारित है। पहली गौणी भक्ति और दूसरी पराभक्ति। पराभक्ति सर्वोच्च अवस्थाकी सूचक है। गौणीभक्तिके दो रूप हैं—एक वैधी और दूसरी रागानुगा। वैधीभक्तिमें शास्त्रानुमोदित विधि-निषेध-

का अनुसरण करना पड़ता है। रागानुगा भक्तिकी भावना "राग" अथवा "प्रेम" पर आधारित है।

वैधी भक्तिमें—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(श्रीमद्भा० ७।५।२३)

इस प्रकार नवधा भक्तिका निरूपण है। नवधा-भक्तिके सतत अभ्याससे ही रागानुगा भक्तिका अधिकार पाया जा सकता है। रागानुगा भक्ति दो प्रकारकी है—(१) कामरूपा और (२) सम्बन्धरूपा; गोपियोंकी भक्ति कामरूपा है। दूसरी सम्बन्धरूपा-भक्ति चार भागोंमें विभाजित है—दास्य, सख्य वात्सल्य, और दाम्पत्य या मधुर। वैष्णव शास्त्रोंमें इनका महत्वपूर्ण वर्णन है। ये चारों ही उच्चकोटिकी भावना या भक्ति हैं। इनसे प्रभुके साथ तदाकारता सिद्ध होती है तथा भक्तके अन्तः करणमें प्रभु-सुख-की भावना जाग्रत होती है। इनके द्वारा वह परमा-नन्द सागरमें डूब जाता है। अकुतोभय हो जाता है। इनके रसमें छक कर संसारकी सब कुछ बातें भूल जाता है। अस्तु सम्प्रति सबका परिचय न देकर 'वात्सल्य' ही के आनन्द-वारिधिमें आपको अव-गाहन करानेकी इच्छा कर रहा हूँ।

वात्सल्य भाव या रस महान् है। यह सर्वजन-सुलभ नहीं है। इसकी प्राप्ति युगो-युगोंकी सुकृतिसे ही यदाकदाचित् होती है। वात्सल्य भावमें प्रेमी भक्त भगवानको अपना पुत्र मानकर उनकी आराधना करता है। उनकी लीलाओंका रसास्वादन करता है। अपने जीवनके प्रत्येक क्षणको उनकी लीलाओं के स्मरण में समर्पित कर देता है।

वात्सल्यका स्थायी भाव विद्वानोंके मतसे अथवा भक्तोंके मतसे वत्सलता स्नेह है। इसमें बालक आलम्बन होता है। उसकी विविध चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं। आलिङ्गन, अङ्गस्पर्श, शिरश्चुम्बन आदि अनुभाव हैं। अनिष्ट शङ्का, हर्ष, गर्व—ये संचारी भाव हैं—

स्थायीवत्सलता स्नेह पुत्राद्यालम्बनं मतं।
उद्दीपना नितच्चेष्टा विद्याशीर्दयादयः॥
आलिङ्गनाङ्ग संस्पर्श शिरश्चुम्बनमीक्षणम्।
पुलकानन्दबाषाद्या अनुभावा प्रकीर्त्तिता।
संचारिणोनिष्टशङ्काहर्षगर्वादयो मता॥
(विश्वनाथ कविराज,साहित्य-दर्पण)

इसका निरूपण भारत, पुराण आदिके निर्माण से असंतुष्ट भगवान वेदव्यासने श्रीनारद मुनिकी आज्ञासे समाधि-भाषा भागवतमें किया है—

अथो महाभाग भवानमोघदृक्
शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये
समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्॥
(श्रीमद्भा० १।५।१३)

—महाभाग व्यासजी। अमोघदृष्टि, पवित्रकीर्ति, सत्यमें प्रीतियुक्त, व्रतधारण करनेवाले आप समाधि लगाकर उरुक्रम भगवानके चरणोंका स्मरण कर वर्णन कीजिये, जिससे सब प्रकारके बन्धन कट जायें।

उस आदेशको शिरोधार्यकर श्रीवेदव्यासने भगवान श्रीकृष्णके पावन चरित्रका गान किया—वात्सल्यका साक्षात्कार कराया। भगवानमें वात्सल्य

भावको साकार रूप देनेमें भाग्यशाली नन्द और पूतचरिता व्रजेश्वरी यशोदाजीका बड़ा महत्व है। इन्हीं दोनों ने वात्सल्य भावकी महानदी प्रवाहित की, जिसमें अवगाहन कर कोटि-कोटि जन पावन हो गये।

श्रीनन्द महाराज पूर्व जन्ममें वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण नामक वसु थे। यशोदा उनकी पत्नी "धरा" थीं। इन दोनोंने कठिन तपस्या कर—बालक श्रीकृष्ण हमारे प्राङ्गणमें बाल-क्रीड़ा करें—यह ब्रह्मासे प्रार्थना की थी। उसीके आधार पर पूर्ण पुरुषोत्तमने इनके मनोरथकी पूर्त्ति तथा असुरोंके भारसे आक्रान्ता पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया। जिस समय भगवान्‌ने जन्म लिया, उस समयकी अपूर्व शोभा थी—

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्।
मही मङ्गलभूयिष्ठपुर ग्रामव्रजाकरा॥
नद्यः प्रसन्न सलिला ह्रदा जलरुहश्रियः।
द्विजालिकुलसंनादस्तबका वनराजयः॥
ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्य गन्धवहः शुचिः।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत॥
मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम्।
जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो दिवि॥
(श्रीमद्भा० १०।३।२-५)

श्रीकृष्णके जन्मकी अवाईमें दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं, आकाश निर्मल हो गया, नक्षत्र मलिनता रहित होकर उदित हुए, पुर ग्राम और व्रजके सभी स्थानों में मङ्गल छा गया। नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। जलाशयोंमें कमलोंकी शोभा बढ़ी, वनराजियोंके पुष्प-गुच्छों पर भ्रमर नाद करने लगे, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन प्रवाहित होने लगा। द्विजोंकी शान्त अग्नि प्रज्वलित होती दिखायी दी, असुरोंको छोड़कर सभी के मन प्रसन्न हो गये। भगवानके अवतारकी बधाई में स्वर्गमें भी वाद्य बजने लगे।

महाभाग नन्दने जब पुत्रका जन्म-संवाद सुना, तो वे भी भाव मग्न हो गये; क्योंकि बड़े पुण्यसे वृद्धावस्थामें लालका जन्म जो हुआ है।

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः॥
(श्रीमद्भा० १०।५।१)

उसी समय नन्दराजने पुत्र-जन्मकी बधाई सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे मङ्गलस्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर शृङ्गार धारण कर ज्योतिषी-ब्राह्मणोंको बुला कर स्वस्ति-वाचन किया। फिर पुत्रका जातकर्म-संस्कार कर पितरों और देवताओंका पूजन किया। साथ ही ब्राह्मणोंको वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित गौएँ दान दीं।

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः।
चित्रध्वजपताकास्रक्चेलपल्लवतोरणैः॥
गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः।
विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चन मालिनः॥
महार्हवस्त्राभरण कंचुकोष्णीषभूषिताः।
गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः॥
गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम्।
आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः॥
(श्रीमद्भा० १०।५।६-९)

व्रज-मण्डलके द्वार, आंगन, गृहोंके भीतरी भाग स्वच्छ किये गये। विचित्र ध्वजा-पताकाएँ, मालाएँ

लगाई गयीं, वस्त्रों एवं पत्तोंकी बन्धनवारोंसे द्वारोंको सुसज्जित किया गया। नन्दके लालने जन्म लिया है—ऐसा सुनकर गोपोंने अपनी-अपनी गौवों और बछड़ों के अंगोंपर हल्दी तेल मिलाकर विचित्र धातु लगाये। शिर पर मोर पंख बाँधे, सुन्दर-सुन्दर भूलें ओढ़ाईं, सुवर्णकी मालाएँ पहिनाईं। स्वयं भी सुन्दर वस्त्राभूषण, अङ्गरखी और पाग धारण किये और अनेक प्रकारकी भेटें हाथमें लेकर नन्दालयको चले। गोपियोंने यशोदाके पुत्रका जन्म-संवाद सुनकर बड़ी प्रसन्नताके साथ रङ्ग-बिरंगे वस्त्र-आभूषण धारण किये और अंजन आदिसे अपने शरीरको अलंकृत करके शीघ्र ही नन्दकुमारके दर्शनार्थ पहुँची।

वहाँ पहुँच कर सभीने नवजात बालकके दर्शन किये तथा अपने-अपने भाग्यकी सराहना की। बालमुकुन्दको नाना प्रकारके आशिष दिये। जगतके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रके व्रज पधारनेके महोत्सवमें जहाँ तहाँ वाद्य बजने लगे—

> अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।
> कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते॥
> (श्रीमद्भा० १०।५।१३)

जगतके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रके व्रज पधारनेके महोत्सवमें जहाँ-तहाँ वाद्य बजने लगे।

प्रसन्नचित्त ग्वालबाल दही-दूध, घी, जल डालने, लेपन करने और परस्पर माखन फेंकने लगे। सभी उस आनन्दमें इतने तन्मय हो गये कि उन्हें समयका भी भान न रहा। श्रीकृष्णके जन्मसे ही नन्दप्राङ्गणमें लक्ष्मीने अपना निवास बना लिया।

श्रीकृष्णका जन्म हुए अभी कुछ ही दिन हुए थे कि बालक पर विपत्तिके बादल उठने लगे। कंसने पूतना नामकी राक्षसीको व्रजमें भेज दिया। वह मोहिनी नारीका रूप धारण कर नन्द-भवनमें उपस्थित हुई और सबको कार्यान्तरोंमें व्यस्त देख बालकको एकान्त में सोया समझ कर गोदमें उठा लिया। उस समय श्रीहरिने अपनी आँखें बंद कर लीं। पूतनाने खिलाते हुए व्रजेन्द्रनन्दनको अपने विष-परिप्लुत स्तन पान कराये। परन्तु श्याम उसके प्राणोंका भी पान कर गये और उसकी छाती पर खेलने लगे।

> बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम्।
> गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः॥
> (श्रीमद्भा० १०।६।१८)

जैसे ही गोपियोंने जोरका धमाका सुना, वे दौड़ कर आयीं और बड़ी भयभीत होकर शीघ्र ही बालक कृष्णको, जो उसकी छाती पर निर्भय होकर खेल रहे थे, उठा लिया। यशोदा और रोहिणीके साथ उन सब गोपियोंने उस बालकके ऊपर गौकी पूँछ फिराते हुए रक्षा-मंत्रोंसे उसकी रक्षा की। श्रीनन्दराय जब कंसकी कर देकर लौटे, तो उन्होंने भी मृत पूतनाका विराट कलेवर देखा और अपने लालके लिए बड़े ही आशंकित हो गये। तब शीघ्र ही भवनमें पहुँच कर उदार-बुद्धि नन्दरायने ऐसा समझ कर कि बालकने पुनर्जीवन धारण किया है—उसे गोदमें ले उसका शिर सूंघा और परमानन्दको प्राप्त किया।

> नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः।
> मध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह॥
> (श्रीमद्भा० १०।६।४३)

धीरे-धीरे आज वह दिन भी आ पहुँचा है, जब कन्हैयाका करवट लेनेका आनन्द महोत्सव मनाया जा रहा है।

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे।
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्॥
वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती॥
(श्रीमद्भा० १०।७।४)

उस दिन बालकके करवट लेनेका उत्सव था। उसी दिन जन्म-नक्षत्र योग भी था। इसलिये बड़े समारम्भमें एकत्रित हुई स्त्रियोंके बीच यशोदाने अपने लाड़ले लालका वाद्य-गीत और ब्राह्मणोंके मंत्र सहित स्वस्तिवाचनसे अभिषेक किया।

फिर प्रिय पुत्रको स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र धारण करा कर भोजन कराया। जब कन्हैयाको निद्रा आने लगी तो नन्दरानीने एक शकटके नीचे सुन्दर पलनेमें उसे धीरेसे पौढ़ा दिया और स्वयं समागत व्रजवासियोंके सम्मानमें लग गई। बहुत समय बीत गया। बालक जगकर रुदन करने लगा और रोते-रोते ही जो चरण उछाले तो उसके प्रहारसे वह शकट उलट गया। सभी वस्तुएँ जो उस पर रखी थीं इधर-उधर बिखर गयीं। झनझनाहटकी ध्वनि सुनकर माता यशोदा दौड़ी—

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत्॥
श्रीमद्भा० १०।७।११)

यशोदाने पाप ग्रहोंकी शंकासे इस रुदन करते हुए बालकको गोदमें ले लिया और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति वाचन करा स्तन-पान कराया। ब्राह्मणोंको बहुत सा दान दिया।

थोड़ेसे दिन भी नहीं बीते हैं कि कंसके द्वारा प्रेषित तृणावर्त नामका राक्षस वायुका रूप धारण कर व्रजमें आ धमका। लाल भी माताकी गोदसे भारी होकर नीचे भूमि पर उतर पड़े हैं। नन्दरानी लालको खेलता देखकर अपने कामोंमें लग गयी हैं। उसी समय भयानक आंधी आई। हाथको हाथ नहीं सूझने लगा। सर्वत्र हाहाकार मच गया। बालककी सबको चिन्ता हो पड़ी। पर ढूँढ़े कहाँ और कैसे ढूँढ़े। निदान सभी चिन्तातुर हो गये। पर प्रभुकी कृपासे कुछ समयके पश्चात् सारी आंधी शान्त हो गयी और सभीने बालकको एक राक्षसका कंठ पकड़े देखा।

प्रादायमात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः।
कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम्॥
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं।
विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्॥
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या।
लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम्॥
(श्रीमद्भा० १०।७।३०)

यद्यपि राक्षस बालकको आकाशमें ले गया तो भी मृत्युसे मुक्त कुशलतासे उस राक्षसकी छातीपर लिपटे हुए श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर माता सभी गोपियाँ गोप नन्द परमानन्दको प्राप्त हुए।

एक समय परमानन्दसे भरी यशोदा अपने लाल को चुचकारती हुई स्तन-पान करा रही थी, तो

श्रीकृष्णने अनायास ही जंभाई ली। तब माताने मुखके खुलने पर आकाश, पाताल, पृथ्वी, तारामंडल, दिशाएँ, सूर्य और चन्द्रके उसमें दर्शन किये। वे चकित होकर सोचने लगीं। उसी समय श्रीकृष्णने मातृभाव विदा न हो जाय, ऐसा सोचकर अपनी योगमायाका प्रसार कर दिया। माताने फिरसे पुत्र को गले लगा लिया। धीरे-धीरे एक दिन श्रीकृष्णका नामकरण भी हो गया और वह अब बाल-लीला करने लगे।

कालेन व्रजतालपेन गोकुले रामकेशवौ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः॥
तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः॥
तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम्।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम्॥
(श्रीमद्भा० १०।८।२१-२३)

कुछ समय बीतनेपर श्रीकृष्ण अपने भाई बलदाऊके साथ गोकुलमें घुटनोंसे और हाथोंसे रेंगते क्रीड़ा करने लगे। जब दोनों भाई व्रजके कीचमें चरणयुगल खींचते हुए विचरण करते थे, उस समय चरणोंकी पैंजनी और कटि-किंकिणीकी झुनकारका शब्द सुन कर बड़े प्रसन्न होते, किलकते, और मार्ग में जाते हुए मनुष्योंको देखकर उनके पीछे-पीछे चलते। अनन्तर भोले बालककी भाँति डर कर अपनी माताओंके समीप भाग आते।

माता यशोदा और रोहिणी अपने पुत्र श्रीकृष्ण-बलरामको हाथोंसे उठा कर छातीसे लगाती, जिनके शरीरमें कहीं व्रजका कीचड़ लगा हुआ है, कहीं केसर लग रही है। उन्हें स्तन पान कराती उनके भोले अति सुन्दर मुखारविन्दोंको देख कर तथा छोटी-छोटी दंतुलियोंका निरीक्षण कर फूली नहीं समातीं। नन्दराजकुमारकी देखभालमें वे अपने घरका काम-धंधा भी विसर जातीं। प्रातःकालसे लेकर सांझ तक उनके ध्यानमें बीतता; क्योंकि वे दोनों बालक बड़े ही नटखट थे। थोड़ासा ध्यान न रखने पर इधर-उधर भाग जाते; निर्भीक होकर किसी भी वस्तुको उठा लेते, किसी जीव-जन्तुको पकड़ लेते। माताको को सदैव यह भय बना रहता कि कहीं किसी प्रकार-का अनिष्ट न हो जाय। क्योंकि वे बछड़ोंकी पूँछ पकड़ कर भी घिसते हुए चले जाते।

शृङ्गाग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः
क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम्।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम्॥
(श्रीमद्भा० १०।८।२५)

खेलमें लगे हुए अपने अत्यन्त चपल पुत्रोंको सींगवाले पशु, अग्नि, दाढ़वाले जीव, सर्प, पक्षी, जल और काँटोंसे बार-बार रोकनेके कारण रोहिणी और यशोदामें अपने घरके काम संभालनेकी भी शक्ति नहीं रही और मन-ही-मन सोचने लगीं कि क्या किया जाय।

अब श्रीकृष्ण घुटनोंके बलसे सरकना छोड़ कर लड़खड़ाते हुए चरणोंसे चलने लगे। गोपबालकोंके

साथ खेलने भी लगे। गोपियोंके घरोंमें जाकर माखन चोरी भी करने लगे। तब गोपियाँ किसी-न-किसी बहानेसे श्याम मुखकी छटा निहारने और उलहना देनेके लिये नन्दरानीके गेहमें भी इकट्ठा होने लगीं। तथा श्यामके अचगरीकी कहानी सुनाने लगीं—

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्॥
हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित्।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः॥
एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचित कृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयन श्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत्॥

(श्रीमद्भा० १०।८।२९-३१)

हे नन्दरानी! हमारा चित्त जब घरके काम-काजमें लगा हुआ होता है, तब तेरा पुत्र कभी-कभी दोहन-समयके बिना भी हमारे बछड़ोंको छोड़ देता है। जब हम उलहना देती हैं, तो हँस देता है। चोरीके विविध उपाय करके मीठे-मीठे पदार्थ दही-दूध आदि चुरा कर खा जाता है। इतना ही नहीं, खानेसे जो बचता है, वह वानरोंको बाँट देता है, जो वे न खाँय, तो बर्तन फोड़ डालता है। किसी समय कोई चीज न मिले, तो हमपर क्रोध कर पालनेमें सोते हुए हमारे बालकोंको रुला कर भाग जाता है। जो हाथ न पहुँचे, तो पाटा और ऊखल आदि रख कर उनके ऊपर उठ कर चोरीकी चेष्टा करता है। यदि छीकों पर ऊँचे रखे हों, तो उन पर रखी हुई वस्तुकी पहिचानके लिये उनमें छेद कर देता है। अँधियारे घरमें रक्खें, तो अपने अङ्गोंकी मणियोंके प्रकाशसे देख लेता है। कभी हम चोर-चोर कहती हैं, तो हमींको चोर कहता है और अपनेको घरका मालिक बताता है। इस प्रकार बहुत ही शरारत करता है। लिते-पुते घरोंमें मूत्र कर जाता है, पुरीष कर देता है। अब देखो, तुम्हारे सामने कैसा दीनसा बन कर खड़ा है। जब इस प्रकार गोपियोंने डराया तो उस समय भयसे मुक्त श्रीकृष्ण-के मुखकी शोभा अपूर्व हो गयी। गोपियोंकी सारी बातें सुनकर भी नन्दरानीने पुत्रको धमकानेकी इच्छा नहीं की—गोपियोंकी भी अन्यथा भावना नहीं हुई; क्योंकि वह तो श्रीमुखका दर्शन करनेको ही आयी थीं।

एक दिन शरारती कान्हने खेलते-खेलते मिट्टी खा ली। सभीने एकत्रित होकर शिकायत की; परन्तु कृष्णने अपने मुखमें विश्वका दर्शन करा कर माताको स्तम्भित कर दिया और वैष्णवी माया फैला दी।

एक दिन नन्दगेहिनी यशोदाकी परिचारिकाएँ कार्यान्तरोंमें लगी हुई थीं। स्वयं नन्दरानी दधिमंथन कर रही थीं। साथ ही बाल-कृष्णके चरित्रोंका गान भी कर रही थीं। माताको दधि-मंथनमें लीन देख कर श्याम स्तनपानकी इच्छासे माताके निकट आये

और मथानीकी नेत पकड़ कर स्तन-पानके लिये मचलने लगे। तब माताने शीघ्रतासे अपने लालको गोदीमें उठा लिया और छातीसे लगा कर स्तन पान कराने लगी।

तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं
स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम्।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया
बुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते॥
(श्रीमद्भा० १०।९।५)

संजातकोपः स्फुरिताधरं संदश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम्।
भित्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः॥
उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम्।
भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्मतज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती॥
उलूखलांघ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम्।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः॥
(श्रीमद्भा० १०।९।५-८)

भगवानको गोदीमें बैठा कर यशोदाजी स्नेहसे स्तन पान कराती जाती थीं और मुखमाधुरीका भी पान करती जा रही थीं। इतनेमें ही चूल्हे पर चढ़े हुए दूधका उफान आया देख कर अतृप्त अपने मोहनको छोड़कर वहाँ दौड़ गयी। लालको इससे क्रोध चढ़ गया। उनके होठ फड़कने लगे, झूठे आँसू आ गये और दाँतोंसे ओष्ठ चबाते हुए पत्थरसे छाछ-का माट (विलोचना) फोड़ डाला। फिर घरके भीतर एकान्तमें जाकर नवनीत चोर नवनीत खाने लगे। जैसे ही औंटे दूधको चूल्हेसे उतार कर यशोदा जी मंथन मन्दिरमें लौटीं, तो मथानीको फूटी पड़ी पायीं और वहाँ कन्हैयाको न देख कर एक बार हँस पड़ी। फिर आगे जाकर क्या देखती है कि औंधे ऊखल पर खड़े होकर छींके पर रखे मक्खनको बन्दरों को दे रहे हैं। चोरी करनेसे सशंकित-नेत्रयुक्त पुत्रको देख कर माता उसे पकड़नेको धीरे-धीरे पीछेसे आयी। कन्हैयाने जब देखा कि माता क्रोधसे भर रही है, वह हाथमें छड़ी लेकर पीछे आ रही है, तो वह भी ओखलसे कूद कर भागे।

तामत्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-
स्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत्।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां
क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः॥
(श्रीमद्भा० १०।९।९)

छड़ी लेकर आती हुई माताको देख कर गोपाल झटसे ओखलीसे कूद कर भयभीत होकर भागे। तब यशोदाजी भी उनके पीछे दौड़ी। परन्तु वे कन्हैयाको पकड़ न सकीं; क्योंकि जिनको योगियोंका मन भी पकड़नेमें असमर्थ होता है, उन्हें भला नन्द-रानी कैसे पकड़ पातीं। परन्तु बड़े प्रयत्न से दौड़ कर श्रीकृष्णको कुछ समयके पश्चात् पकड़ ही लिया। यह नन्दगेहिनीका ही सौभाग्य है।

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी
कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना।
उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं
हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत्॥
(श्रीमद्भा० १०।९।११)

श्रीकृष्णका हाथ पकड़ कर वे उन्हें डराने-धमकाने लगीं। उस समय श्रीकृष्णकी झाँकी बड़ी विलक्षण हो रही थी। अपराध तो किया ही था, इसलिये रुलाई रोकने पर भी न रुकती थी। हाथोंसे

आँखें मल रहे थे। इसलिए मुँहपर काजलकी स्याही फैल गयी थी। पिटनेके भयसे आँखें ऊपरकी ओर उठ गयी थी, उनसे व्याकुलता सूचित होती थी। बालकको अतीव भयभीत जानकर हाथकी छड़ी नीचे डाल दी और रस्सीसे बाँधनेका उपक्रम करने लगी। जिसे कोई भी नहीं बाँध सकता, उसे नन्दरानीने बाँधनेका प्रयत्न किया।

तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥
(श्रीमद्भा० १०।९।१४)

अव्यक्त अधोक्षज उस बालकको पुत्र मानकर यशोदाने उसे प्राकृत बालकोंकी भाँति रस्सीसे बाँधनेका निश्चय किया। परन्तु जो भी रस्सी मँगायी गयी या जोड़ी गयी, वे सब दो अंगुल छोटी होती गयीं। इस प्रकार सारे घरकी रस्सियाँ जोड़ लेने पर भी नटनागर बँधे नहीं। यह देख कर दूसरी गोपियाँ हँसने लगीं। तब माताको अत्यन्त श्रमित जान कृपा कर बँध गये—

स्वमातुः खिन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्ण कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने ॥
(श्रीमद्भा० १०।९।१८)

अपनी माताको, जिनकी चोटीसे पुष्पकी माला बिखर गयी है, सारा शरीर पसीनेसे तर हो रहा है, घबराहट बढ़ गयी है, थकित देखकर कृपा कर वे स्वयं बँध गये। भगवानको कौन बाँध सकता है; वे जिस पर कृपा करें, वही उनको बाँध सकता है। जिस सुखको किसीने भी प्राप्त नहीं किया उसे नन्दरानीने प्राप्त कर लिया। कितनी भाग्यशालिनी हैं नन्दरानी !

नेमं विरञ्चो न भवो श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥
(श्रीमद्भा० १०।९।२०)

भगवानकी जो कृपा ब्रह्मा, शिव और वक्षस्थल पर निवास करनेवाली लक्ष्मी पर भी नहीं हुई, वह कृपा आज नन्दरानी पर हुई है। (क्रमशः)

—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

व्रजके विरही

व्रजके विरही लोग विचारे।
बिन गोपाल ठगे ठाड़े, अति दुर्बल तन हारे।
मात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँझ सकारे।
ये मथुरा काजर की रेखा, जे निकसे ते कारे।
परमानन्द स्वामी बिन ऐसे, ज्यौं चंदा बिनु तारे॥

वृन्दावनकी पृष्ठभूमि

इस परम रसमय विपिनका नाम वृन्दावन कैसे पड़ा ? इस सम्बन्धमें विभिन्न पुराणोंमें विभिन्न मतोंका उल्लेख मिलता है। जहाँ तक वृन्दावन शब्द के अर्थका प्रश्न है, वह निम्न प्रकार है:—

(क) वृन्दावन=वृन्दा+वन । वृन्दा=तुलसी, तस्याः वनम् । अर्थात् तुलसी का वन ।

(ख) वृन्दादेवी अधिष्ठात्री यस्याः तद् वनं वृन्दावनम् । अर्थात् श्रीमती राधादेवीजीसे अधिष्ठित वन।

(ग) वृन्दानाम्=गो समूहानाम् अवनं रक्षणं यत्र तद् वनं वृन्दावनम् । अर्थात् जिस वनमें गौ समूहकी रक्षा हुई हो ।

(घ) तंत्र ग्रन्थोंमें वृन्दावन शब्दका अर्थ इस प्रकार किया गया है:—"वृन्दा भक्तिस्तयैव अवनं पालनं यत्र तद् वृन्दावनम्", अर्थात् जहाँके समस्त प्राणी श्रीकृष्ण-भक्ति से ही जीवित रहते हैं ।१

(ङ) वृन्द=सखीसमूह । अ=अस्ति=जहाँ हो । अर्थात् सखी समूह युक्त श्रीराधा ।२

उपनिषदोंमें वन शब्दका अर्थ वननीय व भजनीय बताया गया है । इस व्युत्पत्तिसे भी सखी समूहयुक्त श्रीराधिका जहाँ हों, वही वृन्दावन है । "शक्तिशक्तिमतोरभेदः" के अनुसार श्रीराधा और कृष्ण विलास हेतु दो रूपोंमें प्रकट होने पर भी अभिन्न ही हैं । इसलिये उक्त व्युत्पत्तिका तात्पर्य यह स्पष्ट करता है कि श्रीराधा-कृष्णके विहारस्थलको वृन्दावन कहते हैं ।

(च) श्रुतियोंमें श्रीराधाजीके अनेकों नामोंसे एक नाम "वृन्दा" भी मिलता है । श्रीराधाजीकी क्रीड़ा-का सुरम्य वन होनेके कारण इस मनमोहक विपिन का नाम वृन्दावन है ।३

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्रीवृन्दावनसे सम्बन्धित होनेके कारण ही श्रीराधाजीको "वृन्दावनी" भी कहा जाता है ।४

उक्त सभी अर्थोंको पुष्ट करनेके लिये पुराणोंमें यथेष्ट प्रमाण उपलब्ध है । ब्रह्म-वैवर्त पुराण श्रीकृष्ण-लीलाके लिये एक प्रमाणिक एवं सम्मानित महाग्रन्थ है। प्रस्तुत पुराणमें उल्लेख है कि सत्ययुगमें सप्तद्वीपों का अधिपति केदार नामक एक महाप्रतापी राजा हुआ जिसकी कन्याका नाम "वृन्दा" था । श्रीदुर्वासा ऋषिसे मंत्र उपलब्ध कर कन्या वृन्दाने किसी निर्जन वनमें महाउग्र तप किया । उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर श्रीभगवान्ने उसे दर्शन दिया और उससे वर माँगनेके लिये कहा । किन्तु श्रीभगवान्के मनमोहक स्वरूपको देखकर कन्या वृन्दा प्रेमके वशीभूत होकर मूर्च्छित हो गयी । श्रीभगवान्के द्वारा सचेत किये

---

[१] द्रष्टव्य-सर्वेश्वर, वृन्दावनाङ्क-पृष्ठ ६७ ।

[२] द्रष्टव्य- ब्र. वै. पु. ४।१७।२३३

[३] राधा षोडशनाम्नाञ्च वृन्दा नाम श्रुतौश्रुतम् ।
तस्या क्रीड़ावनम् रम्यं तेन वृन्दावनं स्मृतम् ॥
(ब्र. वै. ४।१७।२१४)

[४] अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता ।
वृन्दावनस्याधिदेवता तेन वाथ प्रकीर्तिता ॥
(ब्र. वै. ४।११।२३७)

जाने पर वृन्दाने पतिरूपमें उन्हें प्राप्त करनेकी अभिलाषा प्रकट की। इस प्रकार श्रीप्रभुके उस वृन्दाको पत्नीरूपमें अंगीकार कर लेनेके उपरान्त वह वृन्दा श्रीराधिकाके समान ही सौभाग्यवती बनी और उसी वृन्दाके नामसे इस पावन रसमय वनका नाम वृन्दावन पड़ा (१)।

इस प्रसंगसे यह भी पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि सत्ययुगमें भी यह रमणीक वन एक तपस्थलीके रूपमें प्रसिद्ध था। श्रीकृष्णके साथ उस वृन्दाके क्रीड़ा-विहारादि करनेसे भी इसे वृन्दावन कहा गया है (२)।

दूसरा आख्यान इस प्रकार मिलता है कि महाराज कुशध्वजकी वेदवती और तुलसी नामक दो कन्याएँ थीं। दोनों कन्याओंने श्रीभगवानको प्राप्त करनेके लिए अत्यन्त उग्र तपस्या की। वेदवती रामावतारके समय जनक-नन्दिनी सीताके रूपमें उत्पन्न होकर श्रीप्रभुको प्राप्त हुई और तुलसीको दुर्वासा ऋषिके शापके कारण शंखासुर प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् उसने कमलाकान्त भगवान श्रीहरिको पतिरूपमें वरण किया। यही सुरेश्वरी तुलसी श्रीहरिके अभिशापसे वृक्षरूपा हुई और स्वयं श्रीभगवान्‌के उनके अभिशाप से शालग्राम (शिलारूप) हुए। शालग्राम-मूर्त्ति के हृदयमें सर्वदा स्थित रहनेका परम सौभाग्य भी तुलसीको प्राप्त हुआ। इसी सुरेश्वरी तुलसीकी तपस्या-स्थली होनेके कारण इस वनका नाम वृन्दावन पड़ा (३)।

तृतीय आख्यान ब्रह्म-वैवर्त पुराणमें ही इस प्रकार है कि जब भगवान श्रीकृष्ण इस भूलोक पर अवतरित होने लगे, तो उन्होंने श्रीराधिकाजीकी प्रसन्नताके लिए अपने अवतरणसे पूर्व ही अपने उस नित्यधाम गोलोकको "वृन्दावन" नामसे इस भूतल पर प्रकट किया (४)।

श्रीवेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंमें अनेक स्थलोंपर इस भगवत्-धामका उल्लेख "परमं पदम्" नामसे किया है। (५) वेदोंमें भी "धाम" और "परमपद" आदि नामोंसे श्रीवृन्दावनका उल्लेख मिलता है कि भक्त और मुक्तजन जिसका निरन्तर अनुभव करते हैं, वही श्यामसुन्दर विष्णुका परम पद है। (६)

जिस परमपद रूप श्रीवृन्दावनमें श्रीप्रभुने गोचारणादि व्रजलीलाएँ एवं नित्य-विहारादि लीलाएँ की हैं, उन्हीं लीलाओंका वर्णन बीजरूपसे वेदोंमें मिलता है; वह भी वृन्दावनके उद्देश्यसे ही है—

(१) राधा समा सा सौभाग्याद्गोपी श्रेष्ठा बभूवह।
वृन्दा यत्र तपस्तेये तत्तु वृन्दावनं स्मृतम्॥
(ब्र० वै० ४।१७।२०३-२०४)

(२) वृन्दयाऽत्र कृता क्रीड़ा तेनवै मुनिपुगवः।
(ब्र० वै ४।१७।२०५)

(३) तस्याश्च तपसः स्थान तदिदं च तपोधन।
तेन वृन्दावनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः॥
(ब्र० वै० ४।१७।२१२)

(४) गोलोके प्रीतये तस्याः कृष्णेन निर्मितं पुरा।
क्रीडार्थं भुवि तन्नाम्ना वनं वृन्दावनं स्मृतम्॥
(ब्र० वै० ४।१७।२१५)

(५) परमं पदं वैष्णवमामामनन्ति।
भा० (२।२।१८)

(६) तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
(ऋग्वेद १।२।७)

तावां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदं अवभाति भूरि ॥
(ऋग्वेद २।२।२४)

उक्त मंत्र कुछ पाठ भेदसे यजुर्वेदमें निम्न रूपमें मिलता है:—

याते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पद वभाति भूरि ॥
(यजुर्वेद ३।६)

ऋग्वेद और यजुर्वेदके उक्त मंत्रोंमें गोचारण-लीलाका उल्लेख स्पष्ट है । यह लीला वृन्दावनके अतिरिक्त अन्य किसी धाममें नहीं हुई । अतः उपयुक्त मंत्रोंमें धाम और परमपद शब्दोंके द्वारा श्रीवृन्दावनका ही बोध होता है । यह धारणा उपनिषदों के अनुशीलनसे और भी स्पष्ट हो जाती है ।

गोपाल उत्तर-तापिनी उपनिषद्में श्रीवृन्दावनका नाम "गोपालपुरी" भी मिलता है (१) और स्पष्ट रूप से वृन्दावन शब्द का भी उल्लेख है । उसे ब्रह्मस्वरूप बतलाया गया है ।

यही आशय अथर्व-वेदीय पुरुषार्थ-बोधिनी उपनिषद्में व्यक्त किया गया है कि—"उस ब्रह्मपुरका ही नाम दिव्य वृन्दावन है जो सर्वदा शेषके अङ्कमें स्थित रहता है, वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मरूप है । (२) कृष्णोपनिषद्में इस रसमय वनको वैकुण्ठ और यहाँ के वृक्षोंको तपस्वी कहा गया है । (३)

श्रीशंकरजीने पार्वतीजीको बतलाया कि सर्वलोक मूर्धन्य नित्य वृन्दावन धाम समस्त ब्रह्माण्डोंके ऊपर एवं श्रेष्ठ है । वह बहुत दुर्लभ, सर्व-शक्ति सम्पन्न, परम-गोप्य एवं वैष्णव भक्तोंका सर्वस्व है । (४)

वृन्दावनके अन्तर्गत "पीठ" शब्दका भी उल्लेख इस प्रकार मिलता है कि शुद्ध-सत्त्व-रूप श्रीहरिगोविन्द श्रीराधाजीके साथ इस पीठ (वृन्दावन) में नित्य क्रीड़ा (विहारादि) करते हैं । स्वयं श्रीभगवानने भी कहा है— श्रीगोवर्धन युक्त वृन्दावनमें जो मेरा पीठ है वह उत्तम है । उस आवरणवाले स्थल को श्रुतियाँ भी खोजती रहती हैं । (५)

इस प्रकार वेद और उपनिषदोंमें धाम, परमपद, वैकुण्ठ, वन, ब्रह्मपुर, गोपालपुरी, योगपीठ, श्वेतद्वीप (६) आदि नामोंसे वर्णित श्रीवृन्दावन धामको पुराणों में सर्वोपरि मानकर इस रसमय वनका विस्तृत वर्णन किया गया है । (क्रमशः)

—केदारदत्त तत्राडी एम० ए०, रिसर्च स्कालर

(१) तस्मात् गोपालपुरी हि भवतीति । (गोपाल उत्तर-तापिनी मंत्र १२)
(२) दिव्यं वृन्दावनं नाम शेषांगस्थं च सर्वदा ।
ब्रह्मरूपमिदं देवी सच्चिदानन्द रूपकम् ॥ (पु० बो० उ० ११ प्रपाठिका)
(३) गोकुलं वनं वैकुण्ठ तापसा तत्र ते द्रुमाः । (कृष्णोपनिषद् मंत्र—९)
(४) दुर्लभां च परमं मोहनं परम् ।
नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डो परिसंस्थितम् ॥ (प० पु० पातालखन्डे अध्याय ८३ वृन्दावन-माहात्म्य)
(५) तस्मिन् वृन्दावनारण्येमध्ये मत्पीठमुत्तमम् ।
सप्तावरणकं स्थानं श्रुतिमृग्यं निरन्तरम् ॥ (ब्रह्म—संहिता)
(६) भजे श्वेतद्वीप·····क्षिति विरक्त चाराः कतिपये ॥ (ब्रह्म—संहिता)

नन्दोद्धार

खिले हुए थे पुष्प मनोहर
सजल स्वच्छ सर कानन में ।
छिटक रही थी चारु चन्द्रिका
अवनि और गगनांगन में ॥१॥

मानो रौप्यमयी वसुधा में
रङ्ग बिरंगे चित्र बने ।
अथवा व्रज मण्डल अखण्ड नव
निर्मित रजत वितान तने ॥२॥

कोकिल कीर कलापि कोक कल
कारण्डव-कुल काक रहे ।
निपट निराली माया विलोक कर
प्रमुदित होकर झांक रहे ॥३॥

मोहमयी विटपावलि व्रज की
शान्त-सिन्धु में डूब गई ।
तजकर अपने तन की सुधि बुधि
मादक मद में चूर हुई ॥४॥

शुकलपक्ष कार्त्तिक सुमास में
शरद रजनि थी अति सुहावनी ।
मानो जग को स्वयं मोहने
आई हो जलजा लुभावनी ॥५॥

जिस दिन सुर को इस सृष्टि का
हुआ प्रबोध अबोध नशा कर ।
नाम हुआ था सुर-प्रबोधिनी
एकादशि निज बोध जताकर ॥६॥

जिस दिन सिन्धु सुता वृन्दा बन
स्वयं सुरेश पति को पाकर ।
प्रकट हुई थी पावन-वन में
पाते मुक्ति नित्य गुण गाकर ॥७॥

मोक्षदायिनी उसी निशा में
जान अवसि आगम द्वादशि का।
उदित हुआ कमनीयभाव तब
नाश हेतु नृप-मन कल्मषका ॥८॥

अगमानन्त अखण्ड अगोचर
गो-चरणों का बन अनुगामी।
गोप गेह में प्रकट हुआ था
स्वयं कृष्णचन्द्र अन्तर्यामी ॥९॥

शूर - वंश - अवतंस - हंसा
जन-मानस - अरुणारविन्दका।
राधा-मन-पंकज मिलिन्द सा
निरानन्द आनन्द नन्दका ॥१०॥

वही नन्द उस नीरव नीशि में
बढ़े जा रहे थे गँभीर से।
मन था भाव-तरङ्गित उनका
बने हुए थे सरित नीर से ॥११॥

अर्धयामिनी विगत हुई थी
सोम जारहा था स्वगेह को।
नन्द कलिन्द-जा कूल खड़े थे
होकर विदेह से ले स्वदेह को ॥१२॥

ऊपर नभ था नीचे जल था
किन्तु रजतमय सभी दीखता।
पूर्ण ब्रह्म की भव-माया में
लीन हुआ संसार दीखता ॥१३॥

ज्यों ही अपने चारु चरण को
डाले व्रज अवनी अधीश ने।
चंचरीक- प्रिय - पति - तनयाके
चंचल-जल में व्रजाधीश ने ॥१४॥

त्योंही पक्ष यक्षचर जलपति
पहुँचे वरुण-लोक में लेकर।
जटिल-पाश में जकड़ दिया तन
शान्त हुए उनको दण्डित कर ॥१५॥

(क्रमशः)

—शङ्करलाल चतुर्वेदी, एम. ए. साहित्यरत्न

प्रचार-प्रसंग

झूलन-यात्रा

गत २७ श्रावण, १२ अगस्त, रविवार, एकादशीसे लेकर ३० श्रावण, १५ अगस्त, बुधवार, पूर्णिमा तक ४ दिन श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीका झूलन-महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। सभा मण्डप, हिंडोला और श्रीमंदिर नाना प्रकारकी आलोकमालाओं, रंगबिरंगे वस्त्र, कदली वृक्षों एवं आम्र-पल्लवोंसे सुसज्जित हो रहे थे। नित्य प्रति नयी-नयी झाँकियाँ, विराट संकीर्त्तन और प्रवचन आदि महोत्सवके मुख्य आकर्षण थे। दर्शकों की बड़ी भीड़ने प्रतिदिन झूलनका दर्शन किया और हरिकथा श्रवण किया।

यह उत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखाओंमें विशेष कर चुचुड़ा और गोलोकगंजमें धूम-धामके साथ सम्पन्न हुआ है।

श्रीश्रीबलदेवाविर्भाव

गत ३० श्रावण, १५ अगस्त, बुधवार, पूर्णिमाके दिन श्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके समस्त शाखा मठोंमें उपवास, कीर्तन और भाषण-प्रवचनके माध्यमसे पालित हुई है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस संध्यारतिके पश्चात एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीबलदेव-तत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिया। उन्होंने बतलाया कि जीवके हृदयमें श्रीबलदेवका चिद्बल संचारित नहीं होनेसे श्रीकृष्ण पादपद्मके आविर्भावकी सम्भावना नहीं है। श्रीगुरुदेव साक्षात् बलदेवके प्रकाश-विग्रह हैं, उनकी कृपासे ही कृष्णकी कृपा हो सकती है।

श्रीश्रीजन्माष्टमी

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत ६ भाद्रपद, २३ अगस्त बृहस्पतिवारको समितिके सभी मठों में श्रीकृष्णकी जन्माष्टमीका व्रतोपवास और दूसरे दिन शुक्रवारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सुसम्पन्न हुए हैं।

इस वर्ष श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीश्रीआचार्यदेव स्वयं उपस्थित रहनेसे यहाँ पर यह उत्सव विशेष समारोहके साथ मनाया गया है। उस दिन मंदिर और सभा मण्डपको आम्र-पल्लव, कदली वृक्ष और बन्दनवारोंसे खूब सजाया गया था। मंगलारति और प्रातः—कीर्तनके पश्चात् श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका पारायण आरम्भ हुआ जो मध्यरातमें समाप्त हुआ। पूर्व सूचनाके अनुसार रातके ८ बजे १००८ श्रीश्रीआचार्यदेवकी अध्यक्षतामें एक सभाका आयोजन हुआ, जिसमें नगरके अनेक विद्वान व्यक्ति भी उपस्थित थे। श्रीश्रीआचार्यदेवने वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं शास्त्रीय युक्तियों एवं प्रमाणोंके आधार पर श्रीकृष्ण-तत्त्व, कृष्णका परतमत्व, तथा कृष्णलीला तत्त्व आदिका ऐसा सुन्दर और अपूर्व विवेचन प्रस्तुत किया कि सभी श्रोता मुग्ध रह गये। उन्होंने श्रीकृष्ण-तत्त्व और श्रीराधा-तत्त्वकी उपासनाका भी अश्रुतपूर्व वैज्ञानिक रहस्य बतलाकर सबको आश्चर्य

चकित कर दिया। साकार और निराकार ब्रह्मका विवेचन श्रोताओंके लिये अत्यन्त अभिनव, आश्चर्य जनक तथा हृदय-स्पर्शी था। भाषणके पश्चात सब ओरसे "साधु, साधु" की ध्वनि होने लगी। सबने भाषणकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की। अंतमें श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीकृष्ण-तत्त्व तथा उनके कंस-कारागार मथुरा एवं नन्द भवन गोकुलमें युगवत् आविर्भावके रहस्यके सम्बन्धमें बड़ा ही पाण्डित्य पूर्ण भाषण दिया।

तदनन्तर मध्यरातके समय महा नृत्य-संकीर्तन और जय ध्वनिके बीच श्रीकृष्णका आविर्भाव तथा अर्चन-पूजन सम्पन्न हुआ। अंतमें सबको अनुकल्प का प्रसाद दिया गया।

दूसरे दिन श्रीकृष्ण जयन्तीके पारणके पश्चात् श्रीनन्दोत्सव भी बड़े समारोहसे सुसम्पन्न हुआ। निमंत्रित और अनिमंत्रित सबको श्रीनन्दोत्सवका प्रसाद वितरण किया गया।

अन्यान्य उत्सव जो मनाये गये हैं

(१) ३ सितम्बर को—श्रीअद्वैतपत्नी सीतादेवीका आविर्भाव।
(२) ६ ,, श्रीललिता सप्तमी (आविर्भाव)।
(३) ७ ,, श्रीश्रीराधाष्टमी-व्रत।
(४) ११ ,, (क) श्रीवामनदेवका आविर्भाव।
(ख) श्रीजीव गोस्वामीका आविर्भाव।
(५) १२ ,, श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव।
(६) १३ ,, श्रीहरिदास ठाकुरका तिरोभाव।
(७) १४ ,, श्रीविश्वरूप महोत्सव।

जयपुरमें श्रीश्रीआचार्यदेव

१००८ श्रीश्रीआचार्य देव गत ४ सितम्बरको जयपुर पधारे। वहाँ की जनताने उनका हार्दिकरूपसे स्वागत किया। हलवायी समिति जयपुरमें उनके पार्टीके साथ ठहरनेका प्रबन्ध किया गया तथा यहीं पर प्रतिदिन हरिनाम संकीर्तन, प्रवचन और सत्संग का नियमित रूपसे आयोजन किया गया। ७ सितम्बरको पूर्व सूचनाके अनुसार श्रीश्रीआचार्यदेवने ६ बजे शामको श्रीराधाकृष्ण मंदिर, रायजीका घेरमें तथा ८ बजे श्रीगोविन्दजीके मंदिरमें—इन दो स्थानोंमें आयोजित दो धर्म सभाओंमें श्रीकृष्ण-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व, श्रीकृष्ण एवं राधाकी उपासनाका वैज्ञानिक रहस्य तथा आधुनिक कालमें धर्मकी आवश्यकता आदि विषयों पर बड़ा ही मार्मिक एवं वैज्ञानिक युक्तियोंसे पूर्ण भाषण दिया। उन्होंने गणपति (पशुता+ मानवताका मिश्रण) की पूजा तथा श्याम रंगके कृष्ण तथा गौरवर्णकी राधा अथवा गौरवर्णके गौराङ्ग महाप्रभुकी उपासनाका वैज्ञानिक रहस्य को बतला कर श्रोतृमण्डलीको मुग्ध कर दिया। उन्होंने बतलाया

कि आधुनिक वैज्ञानिक भी कालेरंगको रंग नहीं मानते (Black is no colour)। अतः कृष्ण निर्गुण हैं। वे जगतके गुणोंसे अतीत हैं। दूसरी तरफ समस्त रंगोंके मिश्रणसे गौरवर्ण होता है। गौर वर्णको अंग्रेजीमें Vibgyor कहते हैं, जिससे Violet, Indigo, Blue, Green, yellow, Orange and Red—ये सातों रंग (इन सातों रंगोंके प्रथम अक्षरोंको मिलाकर Vibgyor शब्द बना है) हैं। अतएव श्रीमती राधा अथवा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुमें सभी रंगोंका मिश्रण होनेके कारण अर्थात् वे समस्त सद्गुणोंके आधार होनेके कारण और कृष्ण सांसारिक गुणोंसे अतीत सर्वथा निर्गुण होनेके कारण सबके उपास्य हैं। उन्होंने पन्द्रह दिनों के भीतर ही कृष्ण-पक्षमें कृष्ण एवं गौर अर्थात् शुक्ल पक्षमें श्रीमती राधिकाके अवतीर्ण होनेका वैज्ञानिक विचार भी प्रस्तुत किया।

दूसरे दिन ८ सितम्बरको प्रातः १० बजे स्थानीय "महाराजा" संस्कृत कालेजके प्रिंसीपल श्रीचन्द्रशेखर जी द्विवेदी, महामहोपाध्याय व्याकरणाचार्य, वेदान्त तथा सांख्य तीर्थके आग्रहसे वहाँ के विद्यालयमें श्रीश्रीआचार्यदेवने क्षर और अक्षर तत्त्वका बड़ा ही पाण्डित्य पूर्ण दार्शनिक भाषण दिया। श्रीश्रीआचार्य देवके भाषणके पश्चात् माननीय प्रिंसीपल महोदयने जयपुरकी जनता और विद्यालयकी ओरसे श्रीश्रीआचार्यदेवको अभिनन्दित किया तथा दूसरे दिन वेदान्तके सम्बन्दमें कुछ श्रवण करानेके लिये निवेदन किया। परन्तु समयाभावके कारण वेदान्तके सम्बन्धमें भाषण नहीं हो सका।

इस प्रचार कार्यमें हलवायी समितिके संचालक सेठ मोतीलालजी तथा श्रीओंमप्रकाश ब्रह्मचारीकी सेवा प्रचेष्टा सराहनीय रही है। इनके अतिरिक्त बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री एवं लक्ष्मी मोटर कम्पनी के मालिक श्रीजगदीशजी भी विशेष रूपसे धन्यवाद के पात्र हैं।

—प्रकाशक

नारकी कौन है ?

अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि-
र्विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।
श्रीविष्णोर्नाम्नि मंत्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धि-
र्विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितर समधीर्यस्य वा नारकी सः॥

—श्रीदक्षिणात्यस्य

—जिस व्यक्तिकी भगवत्-विग्रहमें साधारण शिला-बुद्धि, श्रीगुरुदेवमें साधारण मनुष्यबुद्धि, वैष्णवमें जातिबुद्धि, विष्णु अथवा वैष्णवोंके कलिमल नाशक चरणामृतमें साधारण जलबुद्धि, समस्त पाप-नाशक भगवानके नामरूप मंत्रमें साधारण शब्द बुद्धि और सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुमें अन्य देवताके समान बुद्धि होती है, वह निश्चय ही नारकी जीव है।